रूढ़िबद्ध जड़ संस्कारों की त्रासद कथा : बेघर

डॉ. सुषमा सहरावत,

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कमला नेहरू कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

ममता कालिया का 'बेघर' उपन्यास जड़ संस्कार और रूढ़िबद्धता के कारण उत्पन्न मनुष्य जीवन की त्रासद कथा है। कुशल, समझदार और जिम्मेदार जीवनसाथी को अपनी संकीर्ण मानसिकता के कारण ठुकरा कर मूर्ख और बदमिज़ाज जीवन साथी को अपना लेना ही कैसे एक व्यक्ति के जीवन का अभिशाप बन जाता है। इसकी बखूबी प्रस्तुति इस उपन्यास में हुई है।

ममता कालिया द्वारा लिखित उपन्यास 'बेघर' (1971), एक ऐसे व्यक्ति की त्रासद कथा है जो रूढ़िबद्ध संस्कारों में जकड़े होने के कारण अपनी सम्पूर्ण ज़िन्दगी तबाह कर लेता है। परम्परागत संस्कारों की रूढ़िबद्धता उसे घर से बेघर कर देती है। मानसिक सीमाओं से ग्रस्त परमजीत संजीवनी को ठुकरा कर अपने जीवन के समस्त सुखों को खो देता है। लड़की के कुँआरेपन को चीख पुकार और खून से सम्बद्ध मानने की जड़ मानसिकता से ग्रस्त परमजीत प्रथम सहवास में संजीवनी की निर्बाध प्रस्तुति से हताश हो जाता है। अपने 'पहला' न होने की कचोट से वह हर पल आहत रहता है। पढ़ी–लिखी और समझदार संजीवनी मात्र अपनी बाधाहीन प्रस्तुति के कारण ही परमजीत के जड़ संस्कारबद्ध मानस को मिसफिट लगती है। असल में, ''बम्बई की चकाचौंध से भरी फैशनेबल ज़िन्दगी में परमजीत आधुनिकता और फारवर्डनेस का लबादा तो ओढ़ लेता है, परंतु अपनी संस्कारगत संकीर्ण मनोवृत्ति और मानसिकता को परिवर्तित नहीं कर पाता। वह ऊपर–ऊपर से आधुनिक पर भीतर से एक मध्यकालीन दकियानूसी विचार वाला थोथा–सा युवक बनकर रह जाता है।''[1] अपनी संकीर्ण मानसिकता के चलते ही वह संजीवनी जैसी योग्य जीवनसाथी को ठुकरा कर एक धनवान बाप की निहायत ही फूहड बेटी रमा से शादी कर लेता है। फूहड़ रमा सुहागकक्ष में परमजीत की अपेक्षाओं पर खरी उतरती है और सुबह उठकर परमजीत को बहुत अच्छा लगा था। उसकी बीवी कुँआरी थी और सीधी–सादी कुँआरी लड़कियों की तरह उसने रात काफी तकलीफ बर्दाश्त की थी .. . ।''[2] लेखिका ने यहाँ पुरुष मानसिकता पर करारा एवं तीखा व्यंग्य किया है। वही पुरुष जो स्वयं चाहे जितने अनैतिक सम्बन्ध रख चुका हो परंतु पहली रात में अपनी पत्नी को उसी परम्परागत कुँआरेपन की कसौटी पर खरा उतरता देखना चाहता है। हैरानी की बात तो यह है कि परमजीत जैसे पढ़े–लिखे लोग भी इस जड़ मानसिकता के शिकार रहते हैं। शिक्षित होने पर भी दकियानूसी संस्कार इन्हें घेरे रहते हैं और इनका ज्ञान एक सीमित दायरे में ही सिमट कर रह जाता है। ये दकियानूसी संस्कार हो परमजीत जैसे युवकों के जीवन को त्रासद बना देते हैं। रमा से शादी परमजीत को अल्प समय के लिए

ही सुख प्रदान कर पाती है क्योंकि रमा के साथ मिलने वाला प्रारम्भिक सुख और तृप्ति का अनुभव शीघ्र ही एक बासद अनुभव में परिणत हो जाता है। हालाँकि रमा परमजीत को दो बच्चे और भौतिक सुख–सुविधाओं से परिपूर्ण मकान भी देती है किंतु फूहड़ रमा के साथ परमजीत को कभी भी मानसिक शांति प्राप्त नहीं होती। उससे जुड़कर परमजीत अपने अस्तित्व से ही कटता चला जाता है।

उपन्यास पर दूसरे दृष्टिकोण से विचार करने पर स्त्री के जीवन की त्रासदी भी इसमें सामने आती है। संजीवनी का आखिर क्या दोष था? उसने ऐसा कौन–सा गुनाह कर दिया था जो उसका दाम्पत्य जीवन शुरू होने से पहले ही बिखर गया? दरअसल, संजीवनी का दोष मात्र इतना था कि वह एक असफल से बलात्कार की शिकार स्त्री थी और स्त्री के जीवन की यह बहुत बड़ी विडम्बना है कि उसके चरित्र को आज के आधुनिक और वैज्ञानिक कहलाने वाले समाज में भी परम्परागत रूढ़ कसौटियों पर ही कसा जाता है। स्त्री के कौमार्य को आज भी उसी रूढ़ दृष्टि से परखा जाता है जबकि सत्यता इससे काफी दूर होती है। स्त्री का कौमार्य उसकी सच्चरित्रता में निहित होता है न कि उसके शारीरिक गठन में। हैरत यह देखकर होती है कि जो पुरुष स्त्री चारित्र्य के प्रति इतना सचेत और शंकित रहते हैं वह स्वयं अपने चरित्र की शुद्धता पर बल क्यों नहीं देते हैं? सारे नियम और कायदे–कानून पुरुष–वर्ग ने स्त्री जाति के लिए ही क्यों बना दिए है? औरत के जीवन की विडम्बना यह है कि वह आज भी पुरुष–प्रधान समाज में ही जी रही है। कहने को तो आधुनिक भारतीय समाज में स्त्री को पुरुष के बराबर समझा जाता है किंतु वस्तुस्थिति इससे बहुत हटकर है। समाज में वर्चस्व आज भी पुरुषों का ही है। यही कारण है कि पुरुष स्वयं को प्रधान समझता है और उसकी यही मनोवृत्ति परमजीत और बालिया सरीखे लोगों में दिखलाई देती है जिनकी क्षुद्र धारणा यह है कि ––... मैं ही–मैन हूँ। मेरे आगे औरत औरत रहेगी।''[3] परमजीत का अहं और इसकी 'ही–मैन' वाली पुरुष–मनोवृत्ति संजीवनी को अस्वीकृत कर उसका जीवन दुखद बना देने के मूल में रहती है। स्त्री जीवन की यह त्रासदी है कि पुरुष–समाज में स्त्री के कौमार्य को लेकर सदियों से चली आ रही रूह धारणाएँ और अवैज्ञानिक सोच आज भी ज्यों की त्यों विद्यमान है। यह जड़ मानसिकता न केवल स्त्री के ही जीवन को त्रासद बना देती है बल्कि स्वयं पुरुष भी अपने जीवन को त्रासद बना डालने के लिए जिम्मेवार रहता है।

परमजीत के दिलो–दिमाग में बुरी तरह घर कर चुका संशय का कीड़ा उसके जीवन को न केवल खोखला ही करके रख देता है अपितु उसके जीवन को त्रासदायक भी बना देता है। सच तो यह है कि ''संशय जब कीड़े की तरह भीतर घुस जाता है तो इसे खोखला किए बिना नहीं रहता। उपन्यास में इस रूढ़ि पर चोट है।''[4] विवाह हो जाने तथा गृहस्थी बस जाने के बावजूद भी परमजीत अपने को नितान्त अकेला ही महसूस करता है। परम्परागत कसौटी पर खरी उतरने वाली रमा परमजीत की मानसिक क्षमताओं, संवेदनाओं और भावनाओं पर खरी नहीं उतर पाती। असल में, ''खयालों में जो घर उसने बसाया था, उसमें धीमा संगीत, खूबसूरत कमरे और कलात्मक पत्नी थी। पत्नी के साथ उसने एक मोहक और मोहित रिश्ते की कल्पना की थी। कहाँ थी उसमें यह तीखी आवाज, गलत तह किए हुए अखबार और कोनों में दबे हुए तिलचिट्टे।''[5] रमा जैसी कंजूस और बेवकूफ बीवी के साथ परमजीत को निरन्तर यही आभास होता रहता है मानों वह किसी कसाई के हाथों में पड़ गया है और मिमियाने के अलावा उसके पास और कोई चारा शेष नहीं रह गया है। रमा परमजीत को कोमल–कलात्मक प्रकृति के बिल्कुल विपरीत थी। इस तरह ''कौमार्य की कसौटी पर खरी उतरने वाली रमा पति परमजीत की अनगिन कोमल

संवेदनाओं को चूर–चूर कर देती है।''[6] मानसिक सोच–विचारों तथा रूचियों की यह भिन्नता परमजीत के जीवन को विषाक्त बना कर एक त्रासद मोड़ की ओर अग्रसर कर देती है। रमा की अतियों की वजह से परमजीत एक पुरजे की भाँति होकर रह जाता है। वस्तुतः संजीवनी के साथ में जहाँ उसे अकेलेपन से उबारकर उसकी निजता का अहसास कराने की सामर्थ्य थी वहीं रमा से जुड़कर वह अपनी निजता, अपनी पहचान तक खो बैठता है। भावात्मक, दैहिक और मानसिक धरातल पर उसका एकाकीपन इस हद तक बढ़ता चला जाता है कि अन्ततः यह एक क्राइसिस पर समाप्त होता है। तनाव, यातना, टूटन और ठहराव से उसका जीवन बुरी तरह घिर जाता है और अन्त में उसका हार्टफेल हो जाता है।

वस्तुतः यदि देखा जाए तो परमजीत की त्रासदी के लिए केवल रमा ही दोषी नहीं ठहरती बल्कि रमा से भी अधिक स्वयं परमजीत बहुत हद तक जिम्मेवार ठहरता है। यदि यह चाहता तो सुगढ़ और सुशील संजीवनी के साथ अपना सुखी दाम्पत्य–जीवन जी सकता था परंतु परमजीत की दकियानूसी सोच उसे ऐसा नहीं करने देती, ''... उस दिन जरूर उसे चोट लगी थी कि वह लड़की जिसे वह इतनी अकेली, अछूती मानता आया था ऐसे समय उसे सिर्फ अपराधी चुप्पी दे सकी पर अब वह जानता था कि उसे सब–कुछ तोड़ना ही होगा। इतने बड़े समझौते करना उसके स्वभाव में नहीं था ...।''[7] अतः अपने जड़ संस्कारों और बुद्धिहीन हठधर्मिता के चलते परमजीत अपने जीवन की खुशियों को त्रासद मार्ग की ओर मोड़ देता है। अपनी खुशहाली का जो रास्ता वह चुनता है वह उसे पतन की ओर ले जाता है। अपनी मूढ़ता की वजह से ही वह रमा की फूहड़ता को जीवन भर ढोने के लिए विवश हो जाता है और अन्त में उसके रूढ़िबद्ध संस्कार तथा मन में बैठी दकियानूसी की गांठ उसके लिए अभिशाप बन जाती हैं। इस तरह ''परमजीत के मन में कुँवारेपन की धारणा उसकी जीवन–दिशा ही बदल देती है। वह संजीवनी से टूटकर या कटकर अपनी निजता खो बैठता है। इसलिए शायद पात्र का नाम संजीवनी है। वह औसत पति और औसत बाप तो बन जाता है, लेकिन अपनी पहचान खो बैठता है।''[8] परमजीत का हार्टफेल उन पुरुषों की संकीर्ण मानसिकता पर गहरा कुठाराघात है जो अपनी मानसिक जड़बद्धता एवं पिछड़ेपन के कारण अपने जीवन को एक नरक अथवा करुण त्रासदी बना डालते हैं।

इस तरह पुरुष की संस्कारबद्ध जड़ता और संदेह की प्रवृत्ति जीवन में कितनी त्रासद स्थिति उत्पन्न कर सकती है, इसका खुलासा यह उपन्यास करता है। साथ ही कुँआरेपन को परखने की पुरानी कसौटी की रूढ़ धारणा पर भी तीखा व्यंग्य करता है। ऐसी रूढ़ धारणाएँ संजीवनी जैसी स्त्रियों के जीवन को बासद बना देने में मुख्य भूमिका निभाती है। बेकसूर होते हुए भी उन्हें सज़ा भुगतनी पड़ती है – परित्यक्ता के रूप में। दरअसल ''कौमार्य का यह मिथक भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में फैला हुआ है। जहाँ स्त्री इस नियम का उल्लंघन करती है, वहाँ उसे फौरन घर से 'बेघर' कर दिया जाता है – यानी विवाह संस्था से बाहर।''[9] उधर परमजीत जैसे रूढ़िबद्ध पुरुषों का अधकचरा ज्ञान और संकीर्ण संस्कार उनके स्वयं के जीवन को भी त्रासद बना देते हैं। एक दकियानूसी विचारधारा परमजीत के जीवन को त्रासद बना कर रख देती है। अतः ''गलत संस्कार और बुद्धिहीन हठधर्मी ही परमजीत की ट्रेजेडी का मूल कारण है।''[10] इससे भी गहरी त्रासदी यह है कि वह अपनी भूल को स्वीकृत नहीं कर पाता। संजीवनी जैसी कुशल, समझदार और जिम्मेदार जीवनसाथी को ठुकरा कर मूर्ख और बदमिज़ाज रमा को अपना लेना ही उसके जीवन की त्रासदी का कारण बनता है।

इस प्रकार इस उपन्यास में लेखिका ने दिखाया है कि किस तरह संकीर्ण मानसिकता

व्यक्ति के जीवन को पीड़ादायक बना देती हैं। जड़ संस्कार जब किसी व्यक्ति की मानसिकता पर हावी हो जाते हैं तो उसके जीवन में त्रासद स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। 'बेघर' उपन्यास में दिखाया है कि जड़ संस्कार और रूढ़िबद्धता के कारण ही मनुष्य का जीवन अभिशाप बन जाता है।

संदर्भ

1. आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास, डॉ. पारूकान्त देसाई, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1994, पृ. 49.
2. बेघर, ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1989, द्वितीय आवृत्ति–2001, पृ. 122.
3. वही, पृ. 140.
4. हिन्दी उपन्यास एक नयी दृष्टि, इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975, पृ. 100.
5. बेघर, ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1989, द्वितीय आवृत्ति–2001, पृ. 147.
6. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना, डा. उषा यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, एकम संस्करण, 1999, पृ. 2.
7. बेघर, ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1989, द्वितीय आवृत्ति–2001, पृ. 118.
8. हिन्दी उपन्यास एक नयी दृष्टि, इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975, पृ. 100.
9. हंस (पत्रिका), दिसंबर, 2000, अंक–5, क्षमा शर्मा का लेख 'स्त्रियों के मन के अंधेरे कोने', पृ. 88.
10. सम्प्रति मधुरेश, धरती प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण, 1983, पृ. 120.

Copyright © 2017, Dr. Sushma Sehrawat. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.